खाकी राखी बांधती बहनें और उनकी 'सुरक्षा' में लगे तालिबानी भाई

विकास नारायण राय

रक्षाबंधन के दिन, जब भारत में भाई अपनी बहनों की रक्षा के प्रति बेहद सजग होते हैं, पुलिस को भी संतुष्ट होना चाहिए कि स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित होंगी जबकि ऐसा नहीं होता। बल्कि, उलटे, भारी आवागमन को देखते हुये उस दिन विशेष सुरक्षा इंतजाम करने पड़ते हैं। यानी, नये सिरे से यह मुद्दा उठता है कि स्त्री की सुरक्षा धार्मिक परम्पराओं से संभव है या कानूनी समानता से। अफगानिस्तान के नये शासक तालिबान बंदूकों के जोर पर वहां औरतों पर तथाकथित कठोरतम इस्लामी नियम-कायदे लाद रहे हैं लेकिन स्त्रियाँ पहले से कई गुना असुरक्षित महसूस कर रही हैं ।

किसी समाज में पुलिस व्यवस्था स्त्रियों और पुरुषों के लिए भिन्न क्यों होनी चाहिये? सीधा सा उत्तर होगा, इसलिये, क्योंकि स्त्रियाँ ज्यादा असुरक्षित हैं लिहाजा उन्हें अधिक सुरक्षा चाहिये। लेकिन, इसके लिए क्या उन्हें अधिक अवसर नहीं चाहिये जिससे उनमें अधिक आत्मविश्वास पैदा हो? भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं को आगामी एनडीए परीक्षा में बैठने की अनुमति देकर उनका फौज के कॉम्बैट विंग में बतौर अफसर शामिल होने का

धार्मिक सुरक्षावाद की बढ़ती सक्रियता से देश में स्त्री सुरक्षा का तालिबानीकरण ही होगा, न कि स्त्री सुरक्षित हो जायेगी

रास्ता खोल दिया है । जबकि, तालिबान के रूप में भारत के पड़ोस में एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था सत्ता में आयी है जिसका इतिहास अफगानी औरतों को निजता और स्वतंत्रता से वंचित करने का रहा है ।

भारत में राखी के भावनात्मक त्यौहार पर गर्व से कलाई आगे करते भाई की छवि में बहनों के रक्षक ही नहीं, उनका हक छीनने वाले तालिबान भी दिखते हैं । दरअसल, एक ओर वे बहन की रक्षा का संकल्प नया कर रहे होते हैं और दूसरी ओर उन्होंने बहन का पैतृक दाय हड़प कर लिया होता है। यह विरोधाभास पितृसत्ता के लिये नया नहीं है। अगर कोई बहन की ओर बुरी नजर डाले तो ऐसे भी भाई कम नहीं हैं जो मरने मारने पर उतारू हो जायेंगे। लेकिन अगर भूले से भी कभी वही बहन उनसे पैतृक हिस्से का जिक्र छेड़ दे तो बहन भाई का रिश्ता खत्म; तू मेरी बहन नहीं और मैं तेरा भाई नहीं ।

भाई यह नहीं सोचते कि इस तरह वे बहनों को हर तरह से कमजोर कर रहे होते हैं । उनके हिसाब से बहन को उसकी शादी पर तिलक-दहेज चढ़ाने से पैतृक दाय की भरपाई हो जाती है। यदि भाइयों से पूछा जाये कि क्या वे भी पैतृक हिस्सा भूल कर बदले में अपनी शादी के समय तिलक-दहेज लेना चाहेंगे तो शायद कोई भी तैयार नहीं होगा। एक मासूम सा तर्क यह भी होता है कि बहन को तो ससुराल में पति के हिस्से में से मिलना ही है, फिर दोहरा दाय क्यों? लेकिन सच्चाई यह है कि जिसे अपनों से ही अपना कानूनी हक नहीं मिला, उसे दूसरों के भरोसे छोड़ने या लम्बी कानूनी लड़ाई के हवाले करने का हश्र जुआ खेलने जैसा ही तो होगा ।

ऐसे में तमाम बहनों को हताशा में यह भी कहते सुना जाता है कि उन्हें पैतृक दाय चाहिए ही नहीं क्योंकि उन्हें उसकी जरूरत नहीं। सोचिये, कोई भाई ऐसा क्यों नहीं कहता? क्या रिश्तों में मधुरता बनाए रखने का सारा बोझ बहन के सर पर ही लादना शोभा देता है? समाज में लव जिहाद और ड्रेस कोड के नाम पर किस जेंडर को नियंत्रित किया जाता है और किस जेंडर के द्वारा? परिवार में किस जेंडर की शिक्षा और स्वास्थ्य पर ज्यादा खर्च होता है? यह सब संस्कार और परंपरा के नाम पर रोजाना होता है ।

अफगानिस्तान में मर्दों की हथियारबंद टोलियों के रूप में तालिबान भी यही तो कर रहा है । ऊपर से वे औरतों को किसी मनमानी इस्लामिक हद में रहने की हिदायत करते हैं और इस आड़ में उन पर हिंसक गुलामी के मनमाने कोड लागू करते हैं । उन्हें बुर्के में रहना होगा, स्कूलों, खेल के मैदानों और कार्यस्थलों की स्वतंत्रता उनके लिए वर्जित होगी, उनके सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक जीवन को मर्द संचालित करेंगे।

भारत में भी बहुत से धर्म या जाति आधारित सांस्कृतिक/सामाजिक संगठन जेंडर के मुद्दों पर तालिबान की तरह सोचते हैं। उनमें से कुछ शायद जेंडर की एडवांस ट्रेनिंग भी तालिबान से लेना चाहेंगे । लेकिन यह स्त्री की कानूनी समानता के क्षरण की कीमत पर होगा। धार्मिक सुरक्षावाद की बढ़ती सक्रियता से देश में स्त्री सुरक्षा का तालिबानीकरण ही होगा, न कि स्त्री सुरक्षित हो जायेगी ।

(पूर्व डायरेक्टर, नेशनल पुलिस अकादमी, हैदराबाद)

क्या भारत में अब संविधान की ज़रूरत है?

सुब्रतो चटर्जी

11 अगस्त को राज्यसभा में जो हुआ, उस घटना ने संसदीय राजनीति की सीमाएँ तय कर दी हैं ।

वैसे तो 8 नवंबर 2016 को नोटबंदी के फ़ैसले के साथ ही लोकतंत्र को दफ़नाने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी, लेकिन मोदी - 1 पूरी तरह से अपने रंग में नहीं आया था । ये सच है कि मोदी का पहला कार्यकाल अंबानी-अदानी की दलाली के लिए विश्व भ्रमण, भ्रष्टाचार, सार्वजनिक संस्थाओं की बिक्री और लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमज़ोर करने के लिए याद रखा जाएगा । मोदी 1 को पुलवामा में साज़िश के लिए और मॉब लिंचिंग के लिए भी याद रखा जाएगा, लेकिन चुनिंदा पूँजीपतियों के लठैत के रूप में सारे लोकतांत्रिक व्यवस्था को पलीता लगाने के साथ साथ न्यायपालिका के ब्लैकमेल के लिए मोदी -2 का अवदान सचमुच ऐतिहासिक है ।

कोरोना काल के जनसंहार, माइनस में गई जीडीपी आदि पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है । इस लेख का उद्देश्य उन बातों को दोहराना नहीं है ।

11 अगस्त को संसद में प्रधानमंत्री और गृहमंत्री की साजिशन ग़ैर मौजूदगी में जिस तरह से गुंडागर्दी की गई, वह सिर्फ़ अभूतपूर्व ही नहीं बल्कि भारतीय संसदीय राजनीति की सीमाओं को तय करने वाली थी।

11 अगस्त के बाद यह साबित हो गया कि संसद खुद अप्रासंगिक हो गई है । जिस संसद में किसी बिल पर चर्चा भी न हो सके उसे क्यों न भंग कर दिया जाए? अगर संख्या बल ही लोकतंत्र का आधार है तो संविधान की ज़रूरत क्या है?

यहाँ ये समझना होगा कि संख्या बल सरकार का आधार है, न कि लोकतंत्र का । जैसे सरकार देश नहीं है, ठीक उसी तरह से सरकार लोकतंत्र भी नहीं है । सरकार बस एक मशीनरी है, लोकतंत्र को संविधान सम्मत ढंग से चलाने के लिए ।

इसलिए, जब हम संविधान की बात करते हैं तो "हम भारत के लोग" अपने आप ज़ेहन में आ जाता है । इस 'लोग' में सारे तत्वों की मौजूदगी है । इनमें समाज का आखिरी आदमी भी है, नक्सल भी हैं और संघी भी । इनमें राजनेता भी और ग़ैर राजनीतिक व्यक्ति या समूह भी । विरोध पक्ष

और सत्ता पक्ष दोनों हैं । संसद इन्हीं विरोधाभासी तत्वों को समेटे हुए एक अवधारणा है जिसमें फूलन देवी के लिए भी जगह है और किसी तड़ीपार या किसी हत्यारिन साध्वी के लिए भी । नरसंहार के दोषी भी यहाँ हैं और शांति के पुजारी भी।

शायद यही हमारे लोकतंत्र की सबसे बड़ी कमज़ोरी भी है । जब आप किसी व्यवस्था में diametrically opposed forces यानी ध्रुवीय विपरीत शक्तियों को जगह देने या एडजस्ट करने की कोशिश करते हैं तब अक्सर संख्या बल के आधार पर गुंडे, मवालियों और बेशर्म दल्लों के हाथों अपने देश की बागडोर सौंपने के लिए तैयार रहते हैं ।

संविधान में वर्णित 'हम भारत के लोग' एक विद्रुप बन कर रह जाता है। संसद एक सुअर बाड़े से ज़्यादा कुछ नहीं रह जाता है । ऐसे में संसदीय प्रणाली से मोहभंग होना स्वाभाविक है । साठ के दशक में नक्सलियों का नारा यही था कि संसदीय लोकतंत्र पूँजीवादी व्यवस्था का पोषक है, इसलिए मूलत: जनविरोधी है । नक्सलियों के रास्ते को ले कर बहस हो सकती है, लेकिन जब 11 अगस्त आता है और बिना किसी बहस के सरकार के सारे जनविरोधी फ़ैसले जबरन क़ानून की शक्ल अख्तियार कर लेते हैं, तब नक्सलियों की सोच के साथ इत्तेफाक रखने के सिवा कोई चारा नहीं बचता ।

कल ही हमने आज़ादी की 75 वीं वर्षगाँठ मनाने का अभिनय किया । देशभक्ति का क्षणिक ज्वार फिर से उठा । भारत के सर्वकालीन सर्वश्रेष्ठ प्रधानमंत्री मारे जाने के डर से किलेबन्द लाल क़िले की प्राचीर से झूठ और पाखंड का नया पाठ पढ़ाने आए । जनता दो रुपये के काग़ज़ के बने तिरंगे को पकड़ कर आज़ादी का उत्सव मना रही है। रस्में निभाने के लिए जाने वाले इस देश में एक और रस्म अदायगी हो गई।

हक़ीक़त में किसी को फ़र्क़ नहीं पड़ता कि बहुसंख्यक वाद को स्थापित करने के लिए जब सड़कों पर किसी अकेले नागरिक को घेर कर मार दिया जाता है, तब हम भारत के लोग लोग नहीं रह जाते ।

हक़ीक़त में किसी को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि जब यही बहुसंख्यक वाद चुनावी राजनीति की बैसाखी पर सवार हो कर संसद पर क़ाबिज़ होता है तब लोकतांत्रिक देश को हमेशा के लिए दफ़ना दिया जाता है।

विपक्ष के लिए आत्ममंथन का समय है । वे सोचें कि चुनावी लोकतंत्र का हासिल क्या है ...यही ना कि पचास गुंडे संसद का अपहरण कर लोकतंत्र को दफ़ना सकते हैं ।

हम भारत के लोगों को अपनी कायरता, लंपटीकरण और सांप्रदायिकता की उचित सज़ा मिल रही है ।

दक्षिण अफ्रीका में कैसे 'सरकारी सेटिंग' का जन्म हुआ?

मनीष सिंह

ये कहानी किसी माफिया डान की तो नही है, पर भारत के "गुप्ता जी"किसी से कम भी नही। जिस साउथ अफ्रीका मे 1892 में गांधी ने पहुँचकर साम्राज्यवादी लूट के खिलाफ आवाज बुलंद,की.. 1992 मे पहुंचे, गुप्ताओं ने वहां लूट का इतिहास रच दिया।

अजय और अतुल गुप्ता, उत्तर प्रदेश के सहारनपुर मे एक कम्प्यूटर की दुकान चलाते थे।

उनके पिता एक सरकारी उचित मूल्य की दुकान चलाते थे, लिहाजा हर आदमी का उचित मूल्य लगाने की कला विरासत मे मिली थी। राशन दुकान से अच्छा सरकारी सेटिंग सीखने का स्कूल कोई हो भी नहीं सकता।

1992 मे रंगभेद का दौर जा रहा था। पहले गोरे और कालों की मिली जुली सरकार आई और फिर नेल्सन मण्डेला देश के राष्ट्रपति हुए। दक्षिण अफ्रीका बदलाव की बयार से झूम रहा था। दुनिया के लगाए आर्थिक प्रतिबंध हटा लिये गए थे। व्यापार और तरक्की के रास्ते खुल रहे थे। ये अवसरों का समय था।

सही वक्त पर गुप्ता बंधु अफ्रीका आ चुके थे।मंत्री, अफसर और नेताओं के बीच पैठ बनाकर गुप्ता ब्रदर्स ने सरकारी ठेके और सप्लाई शुरू की। पैसा आने लगा।

इस दौर मे अफ्रीका मे एक राजनेता उभर रहा था। जो बढिया वक्ता , लोकप्रिय और काले अफ्रीकन्स के बीच एक बढ़िया "विभाजनकारी" जुलू नेता थे। बहुरंगी देश मे लोकतंत्र हो, विभिन्न कम्युनिटी और ट्राइब्स के बीच मनमुटाव हो तो विभाजनकारी वक्ता का लोकप्रिय होना, और चुनाव जीतना लाजिमी है। बस जरूरत होती है तो पैसे लगाने वाले की। ये श्रीमान थे-जैकब जुमा। गुप्ता बंधुओं ने सही समय पर उसे पकड़ लिया। पैसे लगाए। 2004 मे जुमा थाबो म्बेकी के उपराष्ट्रपति हुए। सरकार का दरवाजा खुल गया, गुप्ताओ के अच्छे दिन आ गए। माइन्स, आईटी, फाइनांस, मीडिया और कई बिजनेस रातोरात खडे हुए और करोड़ों कमाने लगे। 2009 मे जैकब जुमा ने राष्ट्रपति चुनाव लड़ा, जीत गए। अब गुप्ताओं का राजयोग शुरू हो गया। जुमा सरकार पर गुप्ताओं का मुकम्मल कब्जा था। अफसर, मन्त्री की नियुक्ति गुप्ताओं के साथ सेटिंग के आधार पर होने लगी।

सरकारी कंपनियां, इनडायरेक्टली गुप्ताओं के कन्ट्रोल मे आ गई। बाद मे कई सांसदों ने जांच के दौरान बताया है, कि उन्हे पद, गुप्ताओं के लिए लाभकारी सौदों की शर्त के साथ मिला या आफर किया गया।

गुप्ताओं का दखल जुमा सरकार मे इतना ज्यादा था कि कोई प्रतिस्पर्धी कंपनी अफ्रीका मे बिजनेस कर ही नही सकती थी। इस मामले को "स्टेट कैप्चर" का नाम दिया जा रहा है. गुप्ताओं की कमाई खदानो से खूब बढ़ी। इसमें यूरेनियम की खदाने तक शामिल है। गुप्ता फ़ोर्ब्स लिस्ट में भी आ गया, अफ्रीका के सारे अमीरों को तो चटपट पछाड़ दिया। लेकिन इस दौर मे खदानों मे सेफटी मेजर्स के न होने, लेबरो को कम तनख्याह और अमानवीय कार्य कराने जैसे आरोप आने लगे। जिन्हे सरकार में पद नही मिले, या जिनका गुप्ता ब्रदर्स से मामला खपा नहीं, वो गुप्ताओं के विरोध मे आ गए। अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस मे ही दो गुट बन गए। जुमा का दोबारा चुनाव जीतना संभव नही था।

लेकिन जुमा हार जाएं, ऐसा गुप्ता होने कैसे देते। फेसबुक, ट्विटर के हजारो फेक एकाउंट से जैकब जुमा का प्रचार हुआ। उनके विरोधियों को गालियां दी गई। झूठे आरोप लगाए गए। जुमा जूलु हैं, सो जुलु और गैर जुलु के बीच झगड़ा फैलाया गया। साउथ अफ्रीका के सबसे नफरती चुनाव मे जैकब जुमा 2014 मे दोबारा जीते। गुप्ता बंधु अब और ताकतवर, और बेपरवाह हो गए।

लेकिन जुमा का विरोध तेज हो गया था। प्रदर्शन और हड़ताल बढते गए। अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस मे भी जुमा को विरोध बढने लगा। भ्रष्टाचार, पावर एब्यूज, गुप्ताओं से संबंध आदि का शोर इस कदर हुआ, संसद मे आए अविश्वास प्रस्ताव मे खुद को हारता देखकर जुमा ने 2018 में इस्तीफा दे दिया।

और गुप्ता ब्रदर्स? वो दुबई भाग गए। फिलहाल साउथ अफ्रीकन सरकार उन पर सैकड़ों मामलो मे जांच कर रही है। अमेरकी सरकार और कुछ और देश भी मनी लांड्रिंग और नियमों को तोड़ने, फ्र ाड आदि केसेज मे जांच कर रही है। माना जाता है कि इन लोगों ने करीब आठ बिलियन डालर, दक्षिण अफ्रीकी सरकार के खजाने से चुराये है।

आरोप कितने साबित होते हैं, क्या सजा मिलती है, ये वक्त बताएगा। लेकिन अफ्रीका में बसे भारतीय सजा भुगत रहे हैं। हाल में वहां बड़े पैमाने पर दंगे हुए हैं। देश अराजकता के हालात से जूझ रहा है। भारत की पूरी आप्रवासी कम्युनिटी जो दक्षिण अफ्रीका की ढाई प्रतिशत है, स्थानीय लोगों के गुस्से की शिकार है। जिस साउथ अफ्रीका मे गांधी ने भारत को पवित्र देश का दर्जा दिलाया था, गुप्ताओं ने इण्डियंस को वर्स देन व्हाइट्स का तमगा दिलवा दिया है। जैकब जुमा, एक वक्त नेल्सन मण्डेला की टक्कर की लोकप्रियता हासिल कर चुके थे, 9 साल देश का सर्वेसर्वा रहने के बाद फिलहाल जेल मे हैं।